

इतिहास, समाज और पर्यावरण

दुनु राय

जिस इतिहास की हम बात कर रहे हैं, उसी को कुछ और विस्तार में, मैं यहां बताने की कोशिश करूंगा कि पिछले दशकों में पर्यावरण की समझ कैसे बदली है और किस प्रकार से विभिन्न लोग अलग अलग नजरियों से इससे जुड़े हैं। प्रारम्भ के प्रकृति केंद्रित अभियान के मूल में यह भावना थी कि पर्यावरण को विनाश से कैसे बचाया जाए। आपमें से कुछ लोगों ने सुना होगा 1962 में केरल शास्त्र साहित्य परिषद् (KSSP) की स्थापना इस उद्देश्य से की गयी थी कि विज्ञान का प्रसार हो, वह लोगों तक पहुँचे, खास तौर में मलयालम भाषा में उसका विस्तार हो। कुछ दिनों बाद यह समझ में आ गया कि केवल प्रचार प्रसार करने से विज्ञान लोगों तक नहीं पहुँचता है। उसकी एक वजह यह भी है कि विज्ञान कहीं न कहीं अमीरों की संपत्ति बन गया है। विज्ञान को यदि लोगों तक पहुँचाना है तो उसके लिए कुछ अन्य प्रयास करने होंगे। इस बात को ध्यान में रखते हुए 1972 में 'सामाजिक क्रांति के लिए विज्ञान' का एक नया नारा देश को मिला। इसके पहले नेहरूजी ने यह जरूर कहा था कि हमें 'सांइटिफिक टेम्पर' की जरूरत है। लेकिन यह पहली बार इस देश में ऐसा हुआ कि विज्ञान का नाम सामाजिक क्रांति से भी जुड़ा। बढ़ते-बढ़ते केरल शास्त्र साहित्य परिषद् का विस्तार हुआ, केवल केरल में ही 40,000 लोग इसके सदस्य हैं।

उनकी समझ में परिवर्तन तब हुआ जब 1976 में साइलेंट वैली परियोजना की घोषणा केरल में हुई – यह 240 मैगावाट की जल विद्युत परियोजना थी। एक नदी को बांधा जा रहा था जिसमें करीब 530 हैक्टर जमीन डूब रही थी। घाटी घने जंगलों से भरी हुई थी और इसी बात को लेकर KSSP की तरफ से यह मुद्दा उठाया गया कि यह जमीन डूब जायेगी, तो धरोहर समाप्त हो जाएगी। KSSP ने दुर्लभ तथ्यों द्वारा दिखाया कि यह जंगल कितना घना है, इसमें कितनी प्रजातियां हैं और इसलिए यह बेशकीमती धरोहर है जिसको बरबाद नहीं करना चाहिए। काफी बड़ा आंदोलन चला और 1980 के दशक में इन्दिरा गांधी, जो उस वक्त प्राइम मिनिस्टर थीं, इसे रोकने की घोषणा की। रोक तो लगा दी गई लेकिन जो दो चीजें उसके बाद हुईं वह और दिलचस्प हैं।

पहली बार राष्ट्रीय उद्यान की घोषणा हुई और संरक्षण के बारे में एक अवधारणा सामने आई कि अगर प्रकृति को बचाना है तो एक "कोर जोन" हो, जिसमें से इन्सान को निकाल कर उसके अगल-बगल "बफर" बनाना होगा, जिसमें इन्सान रह सकता है। प्रकृति और मानव को अलग करेंगे तभी प्रकृति बच पायेगी। और दूसरा, जो क्रमशः इसके बाद हुआ, वह था कि EIA का प्रचलन हुआ, यानि कि किसी भी परियोजना को स्थापित करने अथवा क्रियान्वित करने के पहले उसके पर्यावरणीय असरों का अध्ययन होना बहुत जरूरी है। जब यह अध्ययन कहेगा कि पर्यावरण के ऊपर कोई असर नहीं पड़ेगा, तभी उस परियोजना को मान्यता प्राप्त होगी। EIA का सिलसिला जब से चला है, तब से यह सवाल भी उठा है कि EIA करता कौन है ? जो परियोजना चलाने वाला है उसी को अगर कहा जाये कि तुम EIA करो तो यह सवाल भी बार-बार उठेगा कि प्रदूषण कौन फैला रहा है ? धरती को बर्बाद कौन कर रहा है ? अगर EIA भी आप उसके हाथों सौंप दोगे तो फिर EIA का क्या अस्तित्व रह जाएगा ?

जो संस्थायें पर्यावरण की रक्षा के लिए बनी हैं, उनमें भी यही बात दिखती है। 1969 में वर्ल्ड वाइल्डलाइफ फंड (WWF) की स्थापना हिंदुस्तान में हुई थी। जानवरों को बचाने के लिए एक फण्ड बनाया गया। बहुत प्रयास के बाद तीन साल के अंदर सन् 1972 में वन्यप्राणी संरक्षण अधिनियम (Wildlife Conservation Act) बन गया। जब अगले साल सन् 1973 में WWF ने प्रोजेक्ट टाइगर

को शुरू किया तब उन्होंने राष्ट्रीय उद्यान वाली अवधारणा को और आगे बढ़ाने की कोशिश की। अगर शेर को बचाना है तो केवल शेर को शिकार से नहीं बचा सकते। शेर के पर्यावरण को भी बचाना पड़ेगा। उसी के लिए टाइगर रिज़र्व (शेर अभयारण्य) का निर्माण उन्होंने आवश्यक समझा। 1973 में इस प्रकार के 9 टाइगर रिज़र्व बने और बढ़ते-बढ़ते वह अब 23 हो गये हैं, यानि कि करीब तीन गुना बढ़ गये। लेकिन अगर शेरों की संख्या पर गौर किया जाए, तो बताया जाता है कि इस देश में 1901 में करीब 40,000 शेर थे, घटते-घटते वह 1972 में, जब यह अधिनियम पारित हुआ, उस समय 1800, और 2008 में जो गणना हुई, उसमें भी वह घट कर 1400 के करीब रह गए हैं। 9,000 हैक्टर से 33,000 हैक्टर बढ़ने के बावजूद शेर नहीं बच पाया है। यह समझने की जरूरत है कि आखिर ऐसा क्यों हुआ ?

1990 में WWF को लगा कि शायद शेर इसलिए नहीं बच रहा है क्योंकि शेर का 'हैबिटेट', शेर जिस परिवेश में रहता है, वह नहीं बच पा रहा है। अगर उसको बचाना है तो कुछ हमको प्रदूषण के ऊपर या पर्यावरण नष्ट करने की ताकतों के ऊपर ध्यान देना पड़ेगा। 1990 में WWF के अंदर प्रदूषण नियंत्रण कक्ष खोला गया। जिसमें उन्होंने मुझे एक इकाई बनाने का कहा। तीन साल के बाद उन्होंने कहा कि अब तुम जा सकते हो क्योंकि तुमने ज्यादा नुकसान कर दिया है। मैंने पूछा वह कैसे ? उन्होंने कहा कि तुम जिस प्रदूषण रोकने की बात कर रहे हो वह प्रदूषण हमारे सबसे बड़े दाता फैला रहे हैं। या तो हम तुमको जीवित रखें या अपने दाताओं को जीवित रखें। इस संदर्भ में याद रखना जरूरी है कि WWF की स्थापना हिंदुस्तान में उन लोगों ने की थी जिन लोगों ने सबसे ज्यादा शेरों का शिकार किया था। जब शिकार करने के लिये शेर नहीं रहा, तब उन्होंने कहा कि शेर को बचाने की बहुत सख्त जरूरत है। यह भी एक विडम्बना है कि पर्यावरण को बचाता कौन है, क्यों और किस प्रकार से ?

अगले ऐतिहासिक दौर में प्रकृति को बचाने के साथ यह सवाल भी उठा है कि मानव को कैसे बचाया जाये क्योंकि मानव भी प्रकृति का एक अंग है। सन् 1973 में कोयल और कारो नदियों पर दो बांध बनने वाले थे जैसे साइलेंट वैली में इसके पहले के दौर में बांध बनने वाला था। उन बांधों में केवल जंगल ही नहीं 112 गांव डूब रहे थे। उन गांवों में रहने वाले आदिवासियों को लगा कि हमारी रोजी-रोटी, हमारी जिंदगी, हमारा आवास यह सब नष्ट होने वाला है। 1976 में कोयल-कारो जन सम्मेलन नाम से एक आंदोलन छिड़ा। इनका पहला मुद्दा था कि इस बांध को बनाने में जो सर्वेक्षण हो रहा है और भूमि अधिग्रहण हो रही है उसी में बहुत सारी गड़बड़ियां हैं। कहीं पर गलत ढंग से सर्वे किया जा रहा है, कहीं पर जिसकी जमीन है, उसका नाम नहीं लिखा जा रहा है, उसमें भी भ्रष्टाचार है, मूल्यांकन में गड़बड़ियां हैं, मुआवजा देने में गड़बड़ियां हैं। इन बातों को लेकर जन आंदोलन शुरू हुआ और 1980 तक आते-आते जन आंदोलन ने माँग की कि जन सर्वेक्षण करने की जरूरत है।

उस समय जन सर्वेक्षण के साधन नहीं थे। अतः हम लोगों ने एक छोटी-सी टीम बनाई और उनको जाकर तीन बातें सिखा दीं। एक तो यह कि नदी में कितना पानी बह रहा है, उसको कैसे नापा जाए। दूसरा, कि उस नदी में कितनी मिट्टी, कितनी गाद है, उसको कैसे नापा जाए। और तीसरा की जमीन का कंटूर कैसे नापते हैं यानि कि अगर पानी एक स्तर तक आएगा तो उसके पीछे कितनी जमीन डूबेगी, उसको नापने की विधि सिखा दी। यह चार दिन की कार्यशाला थी और 19 गांवों में से 38 युवक आये थे। चार दिन में वह यह तीनों काम सीख गये और अगले तीन महीनों में उन्होंने आंकड़े इकट्ठे किये गांव-गांव जाकर जिसमें उन्होंने निकाला कि 112 नहीं, 140 गांव डूब रहे हैं जिसमें 7,000 की जगह 40,000 परिवार हैं। उन्होंने यह भी नापा कि उसमें 152 'सरना' और तीन सौ 'संसाद्री' हैं। संसाद्री और सरना उनके पुराने रीति-रिवाजों से जुड़ी हुई जमीने हैं जहां पर या तो लोगों को दफनाया जाता है या देवी-देवता रहते हैं। इनकी भी उन्होंने गिनती की कि यह

हमारी धरोहरों हैं और यह भी डूबने वाली हैं। मैं यह मानता हूँ कि पहली बार इस देश में एक प्रकार से जनता की तरफ से यह EIA हुआ। इसी EIA के बलबूते उन्होंने कहा कि एक रिपोर्ट लिख दो, जो अंग्रेजी में होनी चाहिए। हमने पूछा क्यों ? उन्होंने कहा कि हिंदी तो हम समझ लेते हैं, लेकिन जो नीति निर्धारक हैं, उनको अंग्रेजी के अलावा और कुछ समझ में नहीं आता। इसलिए यह अंग्रेजी में होनी चाहिए ताकि हम उनको दे सकें, विश्व बैंक को दे सकें, मंत्रालय को दे सकें। आप एक सारांश भी लिख दें ताकि इसमें जो तथ्य हैं वह पूरी तरह से लोगों के सामने आ जायें। उसके बाद आन्दोलन ने सर्वोच्च न्यायालय में एक याचिका दर्ज की। 1995 में पहली बार मेरे ख्याल से पर्यावरण के नाम पर कोयल कारो क्षेत्र में "जनता कपर्धू" लागू किया गया। किस प्रकार से जनता की अपनी ताकत बढ़ती है और कहने के लिए कि यह हमारी संपत्ति है, यहाँ पर हमारा राज चलता है, और यहाँ पर हमारी इजाजत के बिना कोई अंदर घुस नहीं सकता। 2003 में मुख्यमंत्री का बयान आया कि यह परियोजना अब स्थगित कर दी गई है और 2010 में राज्यपाल द्वारा उसको बंद कर दिया गया। कोयल कारो परियोजना अब पूरी तरह से ठंडे बस्ते में चली गयी है। यह एक मिसाल है कि लोग किस प्रकार से विज्ञान को हथियार हैं, कानून को हथियार और अपनी समझ को हथियार के रूप में उपयोग करते हैं। पर्यावरण का संरक्षण करने के लिए। इसमें यह भी बात छुपी हुई है कि EIA कौन बनायेगा, किसके लिये बनायेगा, और उसमें किसकी सूझ-बूझ आएगी।

कुछ दिनों बाद, पर्यावरणीय इतिहास के तीसरे अध्याय में यह भी बात समझ में आने लगी कि केवल मानव जाति को बचाने से बात नहीं बनेगी मानव और मानव में भी अंतर है और सब लोग एक ही तरह के नहीं होते हैं। अगर नाकेबंदी कर रहे हैं, तो कुछ इस तरफ होंगे, तो कुछ उस तरफ 1978 में गोआ के पास जुआरी एग्रो कैमिकल्स का प्लांट बना था। रासायनिक खाद के उत्पादन के लिए क्षेत्र में यह बात फैलाई गई, जो आज भी फैलाई जाती है कि यह फैक्टरी किसानों की भलाई के लिए और देश की तरक्की के लिए बन रही है। जुआरी से जो जलमल निकलता था वह बगल के समुद्र में ही बहा दिया जाता था जिसकी वजह से मछलियां मरने लगीं। वहाँ के मछुआरों ने देखना शुरू किया कि जैसे-जैसे यह फैक्टरी बढ़ रही है, वैसे-वैसे मछलियों की तादाद घटती जा रही है। फिर से रोजी-रोटी का सवाल आया और मछुआरों ने इसी सवाल को लेकर एक अहम आंदोलन छेड़ा कि मछली को अगर बचाना है तो जुआरी को ठिकाने लगाना पड़ेगा। जब यह बात केन्द्रीय सरकार तक पहुँची तो नागपुर की CPHERI संस्थान, जो आजकल NEERI के नाम से जानी जाती है, को अध्ययन का कार्य सौंपा गया कि वह पता लगाए कि जुआरी से समुद्र प्रदूषित हो रहा है या नहीं ? CPHERI ने अध्ययन करके रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसके अनुसार प्रदूषण न के बराबर था और इससे कोई मछली मर नहीं रही थी। गोआ में मछुआरों को इस रिपोर्ट से बहुत आघात पहुंचा कि देश की सर्वश्रेष्ठ संस्थान हमारी बात को नकार रही है तो अब क्या किया जाए ? उनको सलाह दी गई कि परीक्षण गोआ में ही होना चाहिए। गोआ स्टेट लेबोरेट्री को परीक्षण के लिए पूछा गया। वह राजी हो गये और शायद ताज्जुब की बात नहीं कि उनकी रिपोर्ट बिल्कुल NEERI की रिपोर्ट के विपरीत आई। सिद्ध हुआ कि प्रदूषण हो रहा है और इससे मछलियां मर रही हैं। इसी रिपोर्ट की बुनियाद पर मछुआरे फिर से अदालत गये और जुआरी को प्रदूषण नियंत्रण मण्डल का आदेश आया कि इस प्रदूषण को रोका जाए।

इतिहास की शायद बात हो, कि चाहे KSSP का आंदोलन हो चाहे कोयल कारो का आंदोलन, उसी समय धीरे-धीरे इस देश में कानून भी आने लगे। सन् 1974 में जल प्रदूषण अधिनियम आया। उसके बाद प्रदूषण मंडलों का निर्माण हुआ और इसकी वजह से जो तंत्र बना उसी तंत्र का उपयोग करके जुआरी के प्रदूषण को रोकने की कोशिश की गई। लेकिन संयोग की बात है कि 2010 में फिर उसी जुआरी एग्रो कैमिकल्स को केन्द्रीय प्रदूषण मंडल को नोटिस देना पड़ा और मैं देख रहा हूँ कि हर चौथे या पांचवें साल में जुआरी को प्रदूषण रोकने के लिए एक नोटिस देना पड़ता है।

शायद सस्टेनेबल डेवलपमेंट का मतलब यही है कि जुआरी प्रोडक्शन करता जाए, प्रदूषण करता जाए, और केन्द्रीय प्रदूषण मंडल उसको नोटिस पे नोटिस देता जाए, ताकि तीनों की सस्टेनेबिलिटी की इसमें गारंटी रहे।

1977 में छत्तीसगढ़ माईंस श्रमिक संघ की स्थापना दल्ली राजहरा में हुई जहां से भिलाई स्टील प्लांट (BSP) के लौह अयस्क की सप्लाई होती है। दल्ली राजहरा में दो तरह की खदानें थीं। एक जो कि मैनुअल था जहां पर लोग हाथ से खुदाई करते थे, पत्थर को तोड़ते थे, और फिर वह पत्थर BSP जाता था। दूसरा मैकेनाइज्ड था जहां पर सारा काम मशीनों द्वारा होता था और लेबर कम थी। मैनुअल खदान में करीब 8,000 मज़दूर ठेके पर काम करते थे और 1977 में उनको दिहाड़ी में 4,000 मिलते थे और कभी-कभी 16-17 घंटे काम करना पड़ता था। इसी बात को लेकर छत्तीसगढ़ माइन्स श्रमिक संघ की स्थापना हुई। उस समय शंकर गुहा नियोगी जेल में थे। उनको खास तौर से जेल में पैगाम भेजा गया कि जब आप जेल से निकलेंगे, तब आपको इस यूनियन की अध्यक्षता करनी पड़ेगी। करीब छह सालों के अन्दर दिहाड़ी बढ़ते-बढ़ते 4,000 से बढ़कर 80 रूपए हो गयी। इससे समझ में आता है कि मज़दूरों का कितना शोषण उस ज़माने में हो रहा था। लेकिन इसके चलते ठेकेदारी प्रथा पर भी रोक लगने लगी जिससे ठेकेदारों को बड़ा नुकसान हुआ। इधर यूनियन की तरफ से उस मज़दूर पर पैनल्टी लगने लगी जिसने वेतन खरीदने के लिए खर्च नहीं किया लेकिन शराब पर उड़ा दिया। यह भी अनहोनी सी बात है कि कोई यूनियन अपने सदस्यों के साथ ऐसा कर सकती है। वजह थी कि 8,000 मज़दूरों में से करीब आधी महिलाएं थीं। उन्हीं का कहना था कि मर्द यहां से पेमेन्ट लेकर आधा शराब में खर्च करते हैं। इसलिए यूनियन को यह कदम उठाना पड़ा और शराब के ठेकेदारों को बड़ा नुकसान हुआ।

ठेकेदारों ने स्टील प्लांट के ऊपर दबाव डाला कि आप इसका कुछ करीये। 1980 में BSP में मशीनीकरण का दौर इस तर्क पर चलाया गया कि मशीनों की कार्योत्पादन क्षमता मैनुअल लेबर से ज्यादा है। उस समय शंकर गुहा नियोगी ने इस मुद्दे को गंभीरता से लेते हुए यूनियन की ओर से सेमी मैकेनाइजेशन का प्रस्ताव रखा। सेमी मैकेनाइजेशन का मतलब है कि कुछ चीजें आप मशीनों द्वारा करो और बाकी चीजें आप मैनुअल लेबर द्वारा, ताकि उत्पादकता और मज़दूरी दोनों चीजें कायम रहें। यूनियन के आमंत्रण पर J.N.U के चार विधार्थियों ने शोध कार्य सम्माला और आंकड़े इकट्ठा करना शुरू किया कि सेमी-मैकेनाइजेशन, मैकेनाइजेशन या मैनुअल, किसमें सबसे ज्यादा फायदा है। इस प्रकार का शोध इस देश में बहुत कम हुआ है लेकिन छात्रों में एक उत्साह था। शोध कार्य करते करते वह इस नतीजे पर पहुंचे कि अगर केवल आर्थिक तथ्यों को देखेंगे तो मैकेनाइजेशन का मुकाबला मैनुअल नहीं कर सकता। उन्होंने सलाहकारों से भी बात की जिन्होंने समझाया कि वे केवल उन आंकड़ों को देख रहे थे जो उत्पादन से जुड़े हुए थे। जब कुछ पर्यावरणीय आंकड़े जुड़ना शुरू हुए, तब पता चला कि मैकेनाइज्ड तरीके से खोदने में बारूद और बड़ी-बड़ी मशीनों के इस्तेमाल से जो अयस्क पैदा होता है उसमें धूल की मात्रा ज्यादा होती है। BSP धूल लेने से मना कर देती है। खदान में उत्पादकता तो बढ़ जाती है, लेकिन स्टील प्लांट में कम हो जाती है। मैनुअल लेबर से हथौड़ा मार कर अयस्क को तोड़ने पर उसमें धूल के कण कम होते हैं और टुकड़े इस साइज़ के होते हैं जो कि BSP को चाहिए। इस प्रकार से आंकड़ों में जब पर्यावरण की विद्या डाली गई तब देखा गया कि धूल की मात्रा बढ़ने से फेफड़ों पर असर पड़ेगा, सिलिकोसिस बीमारी पैदा होगी, उसका इलाज करना पड़ेगा। अन्ततः यह साबित हो गया कि सेमी-मैकेनाइजेशन एक अच्छा पर्याय है जिसके आधार पर मज़दूर भी जिन्दा रह सकता है, पर्यावरण भी जिन्दा रह सकती है और उत्पादकता भी बढ़ सकती है। 1983 में BSP ने इसी रिपोर्ट के आधार पर मशीनीकरण को स्थगित कर दिया और वह आज भी स्थगित है।

इस क्रम से चलते हुए चौथा पड़ाव आया जिसमें एक सवाल बार-बार उठने लगता है कि विकास किस प्रकार से हो और मेरे हिसाब से यह बहुत बुनियादी सवाल है। एक मिसाल दिल्ली की है। दिल्ली में कुछ दिन पहले बस रैपिड ट्रांजिट कॉरिडोर (BRT) को लेकर काफी हल्ला मचा। BRT में सड़क पर बीच में रास्ता बसों को दिया गया, बगल में दो लेन गाड़ियों को दिया गया और उसके बगल में साईकल और पथिक के लिए भी लगातार जगह दी गई जगह जगह पर फेरीवालों के लिये भी जगह दी गई ताकि वह अपना माल बेच सकें और सड़क पर चलने वाले पथिक और साईकल वालों को भी कुछ खरीदने का मौका मिल जाए। इसके साथ यह तथ्य भी जुड़ा हुआ है कि बस का यात्री हमेशा पथिक होता है। क्योंकि बस से उतरेगा तो उसको चलना पड़ेगा। इसी BRT के खिलाफ कुछ दिन पहले एक स्वयं सेवी संस्था ने जनहित याचिका दर्ज कर दिया उनका दावा था कि बस के रास्ते पर बस तो फर्रटे से दौड़ रही है पर गाड़ी के रास्ते पर गाड़ी वाला जाम में खड़ा है जो गाड़ी वालों के प्रति सरासर अन्याय है। इसीलिए गाड़ी वालों की तरफ से अदालत आये हैं कि बस वाली लेन में गाड़ी को भी जाने की इजाजत हो। सबसे पहला सवाल तो यह उठता है कि यह "जनहित" याचिका है या नहीं, कि जनता कौन है, वह 12 फीसदी जो कि गाड़ियों पर चलती है या वह बाकी 88 फीसदी जो कि बसों पर, साईकिल पर और पैदल चलती है ? लेकिन अदालत ने बिना इस सवाल को पूछे हस्तक्षेप किया। उन्होंने CRRRI को अध्ययन करने के लिए मनोनित किया। अब CRRRI भी नाम अजूबा है, Central Road Reserch Institute यानि कि सड़क के ऊपर शोध करने वाली संस्था।

लेकिन रोड को कौन देख रहा है और किस प्रकार से देख रहा है ? बस वाला देख रहा है, पैदल चलने वाला देख रहा है, रेहड़ी, पटरी वाला देख रहा है ? जो सीवर साफ करने वाला है वे कैसे देखते हैं ? और वृद्ध आदमी रोड को कैसे देखता है ? हम में से जो लोग 70 के ऊपर हो जायेंगे, उनको एक बड़ी चिंता है कि रोड पार कैसे करेंगे। पहले जिसे पेवमेंट या फुटपाथ कहते थे वह भी अब धीरे-धीरे ऊँचा होता जा रहा है, अब वह 18 इंच ऊँचा हो गया है। जिनके घुटनों में दर्द है, वह 18 इंच उतरे, फिर सिग्नल फ्री सड़क पार करें और फिर 18 इंच चढ़े। सिग्नल फ्री किसके लिए, किसके दृष्टिकोण से सड़क देखी जा रही है ? जैसे की CRRRI ने जो शोध किया, उन्होंने दिखाया कि सही में बस की वजह से गाड़ी वालों को बड़ी तकलीफ है। उनकी रिपोर्ट के आधार पर अदालत ने प्रारम्भिक आदेश दिया कि बस कॉरिडोर को खत्म करो और उसमें गाड़ियों को भी चलने के लिए इजाजत दो। संयोग से एक दूसरे जज आए। उनके सामने कुछ और तथ्य पेश हुए। एक और स्टडी हम कुछ लोगों ने मिल कर किया कि सुप्रीम कोर्ट के आदेश के मुताबिक BRT क्यों बना था। उस आदेश में तीन मूल हिस्से हैं। पहला, कि इस कॉरिडोर में पब्लिक ट्रांसपोर्ट के लिए सुविधा होनी चाहिए; दूसरा, कि इसके बनने से भीड़-भड़क्का कम हो; और तीसरा कि प्रदूषण में कमी हो। कुछ तस्वीरें BRT के बनने से पहले की हैं और कुछ BRT के बनने के बाद की। उनकी तुलना के आधार पर हम लोगों ने पाया कि BRT तीनों पैमानों के आधार पर सफल रहा है। संयोग से नई पीठ ने इस बात को सुना और उन्होंने आदेश दिया कि BRT दोबारा चले।

एक नहीं चौदह और BRT अब बनने वाली हैं, लेकिन बार-बार सवाल उठेगा कि क्या BRT को केवल परिवहन के हिसाब से देखना चाहिये या यातायात के हिसाब से, रोजगार के नजरिये या ग्लोबल वार्मिंग की दृष्टि से यानि कि एक बस में जब पचास लोग चलते हैं और एक गाड़ी में दो लोग तो प्रदूषण सबसे ज्यादा कौन पैदा कर रहा है ? विश्व बैंक की एक रिपोर्ट आई है कि बस से ज्यादा प्रदूषण होता है और कार से कम लेकिन यह मापने का उचित पैमाना नहीं है। पैमाना होना चाहिए प्रति सवारी किलोमीटर, यानि कि एक गाड़ी में कितनी सवारी कितने किलोमीटर जाते हैं। उसके हिसाब से एक बस में पचास लोग चढ़ते हैं तो 25 गाड़ियां कम हो जाती हैं। इसी तरह अगर हम एक अमीर परिवार और एक गरीब परिवार के बीच में तुलना करें दिल्ली जैसे शहर में, तो अमीर

परिवार 8 गुना ज्यादा बिजली, 12 गुना ज्यादा पानी और 20 गुना ज्यादा ऊर्जा इस्तेमाल करता है। इस आधार पर अगर ग्लोबल वार्मिंग की बात की जाए तो आखिर "बेस्ट प्रेक्टिस" (उत्तम व्यवहार) किसका है ? जो कम ऊर्जा इस्तेमाल कर रहा हो, जो कम गैस पैदा कर रहा हो, या जो ज्यादा पैदा कर रहा हो ? विकास किस प्रकार से हो और विकास का मॉडल कैसा हो ?

मैं आखिर में दो बातें और जोड़ना चाहूँगा : एक, विकास की परिकल्पना कौन सामने रख रहा है, यह विकास किस वर्ग के फायदे में है ? सेमी-मैकेनाइजेशन कौन चाहेगा, बस कौन चाहेगा, कम से कम जगह में कम से कम पैसों में कम से कम खर्च में जिन्दगी चलाना कौन चाहेगा ? कोई न कोई एक वर्ग होगा इस समाज में जिसके हित में कम साधन उपयोग करना निहित है, दूसरा, यह जो सारे खर्च हैं जो कि हम "कॉस्ट बैनेफिट एनैलिसिस" (लाभ-हानि का हिसाब) में नहीं लाते हैं, EIA में नहीं लाते हैं, अगर हम उनको लाना शुरू कर दें तो क्या मुनाफ़ा होगा ? सरकार कह रही है 112 गाँव डूबेंगे ; अगर उसकी जगह आप कहें कि 140 गाँव डूब रहे हैं, 7,000 नहीं, 40,000 डूब रहे हैं : तो आंकड़ों का पलड़ा बिल्कुल बदलने लगता है। नुकसान बढ़ता जाता है और आखिर में एक यह वक्त भी आता है कि किसी भी परियोजना में आप यह नहीं कह पाओगे कि फायदा ज्यादा है और नुकसान कम क्योंकि यह प्रकृति का नियम है कि आप किसी भी प्रक्रिया से अधिक नहीं निकाल सकते ; अर्थात् एक चीज़ में आप 100 डालो और कोशिश करो कि उसमें से 108 निकले, यह प्रकृति के नियमों के मुताबिक संभव नहीं है इसीलिए अर्थशास्त्र, भौतिक विज्ञान के खिलाफ जाता है, और यही सबसे बड़ी विडम्बना है कि अगर इन सारी कीमतों को आप जोड़ना शुरू कर दो – जिसको अंग्रेजी में Social and Environmental Externalities कहते हैं—तो कहीं न कहीं बैनेफिट कॉस्ट एनैलिसिस पूरी तरह से बिगड़ जाएगा। इसीलिए अब यह सवाल पैदा हो रहा है कि आप विकास की कीमत को कैसे आँकेंगे, कौन इसकी कीमत दे रहा है, किसको फायदा हो रहा है, और किस प्रकार विकास चल रहा है ? मेरी समझ में यह कुछ सीख हैं, कुछ सबक हैं, जो कई लोगों ने मिलकर पर्यावरण विद्या के रास्ते, इस देश में समझने की कोशिश की है।

मैं उनको आपके सामने रख रहा हूँ। इसलिए नहीं कि यह एक अंतिम चरण है, लेकिन इस यात्रा में कई चरण आते हैं और उसको आगे बढ़ाने की जिम्मेदारी आप जैसे लोगों पर ही है। इसको बढ़ाना है तो कहीं न कहीं कुछ दिमागी कसरत करनी पड़ेगी, कुछ ज़मीन पर भी कसरत करनी पड़ेगी।

परिचय

श्री दुनु राय पर्यावरण संबंधी गतिविधियों से सक्रिय रूप से जुड़े होने के साथ, 'फ्रंट फॉर रैपिड इकनॉमिक एडवांसमेंट ऑफ इंडिया' तथा 'विदूषक कारखाना' और 'ख़तरा केन्द्र' जैसी संस्थाओं के संस्थापक हैं। 'प्लैनिंग दि इनवायरमेंट' इनकी पुस्तकों में महत्वपूर्ण है।